

जय प्रकाश

'मिथुन राशि' फणीश्वर नाथ रेणु की प्रायः अचर्चित कहानी है। रेणु को सामान्यतः ग्राम्य-संवेदना के कथाकार के रूप में देखा-जाना जाता है, हालाँकि उनकी आधी-से-ज्यादा कहानियाँ शहरी परिवेश से सम्बंधित हैं। कहा जा सकता है कि कहानी को संवेदना के धरातल पर शहर और गाँव के बीच या निम्नवर्गीय और मध्यवर्गीय बोध के बीच विभक्त कर देना शायद उसकी मूलतः सार्वभौम संवेदना को खण्डित और सीमित कर देना है। लेकिन आंचलिक कथाकार के रूप में रेणु के लेखकीय व्यक्तित्व की जो प्रतिमा निर्मित हुई है वह कुछ इस क़दर रुढ़ हो चली है कि उससे अलग उनकी रचनात्मकता के इतर पहलुओं पर ध्यान ही नहीं जाता। लेखक की मान्य छवि के आधार पर उसके व्यक्तित्व के बारे में, और कई बार उसकी किसी रचना के विषय में भी, सामान्य बोध निर्मित होता है। मान्य छवि और उस पर निर्भर सामान्य बोध का दबाव अक्सर ऐसी रचना के मूल्यांकन में बाधा उत्पन्न करता है जो उससे मेल न खाती हो। 'मिथुन राशि' कहानी के साथ भी यही मुश्किल हो सकती है कि वह एक नज़र में रेणु की कहानी मालूम नहीं पड़ती है, क्योंकि उसकी स्थानिकता की निर्मिति में ग्राम्यांचल और निम्नवर्गीय जीवन की परिधि टूट जाती है और उसकी जगह बिल्कुल अलग परिवेश और भावभूमि का घेरा उभर आता है। 'टेबुल', 'विकट संकट', 'जलवा' 'रेखाएँ', 'वृत्तचित्र', 'अंकुर' जैसी कहानियाँ भी इसी आधार पर रेणु की चालू पहचान से भिन्न स्वर की कहानियाँ जान पड़ती हैं। इन कहानियों में रेणु अपनी प्रदत्त छवि का अतिक्रमण करते हैं। ये रेणु की बाद की कहानियाँ हैं जब वे गाँव के अपने मूल परिवेश से अलग शहरी वातावरण में जा बसे थे। ज़ाहिर है, एक नए परिवेश में ढलने के उपक्रम में लेखक का सृजन-संसार भी धीरे-धीरे उसमें समायोजित होने लगता है। यह रेणु की सृजनात्मकता का दूसरा दौर है जब वे नई तरह के जीवन की गहराई में उतरते हैं, उसकी लय को पकड़ते हैं और उसकी विडंबनाओं का साक्षात्कार करते हैं। महत्त्वपूर्ण यह है कि इस नए जीवन में भी वे उतनी ही गहराई और तन्मयता के साथ डूब कर कहानी रचते हैं जिस तरह से अपने प्रारंभिक जीवन में। कहीं-कहीं तो वे लीक से हटकर उस यथार्थ के करीब जाते हैं जो अब तक लगभग अछूता था। इसे जीवन की गहराई में जाने और उसकी जटिलता से मुठभेड़ करने का लेखकीय दुस्साहस भी कहा जा सकता है। स्त्री-पुरुष संबंधों के जटिल संसार में कभी जब नई कहानी ने प्रवेश किया था तब उसे भी इसी दुस्साहस के रूप में देखा गया था, क्योंकि अनुभव के एक अपरिचित इलाक़े में यह कहानी का पदार्पण था। लेकिन वहाँ अनुभव की जटिलता को रचने की स्पृहा उस एकाकीपन को बुनने में चुक गई थी जिसे आधुनिक संवेदना और भोगा हुआ यथार्थ के नाम पर स्वयं लेखक ने गढ़ा था। इसके विपरीत रेणु ने स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलता को स्वायत्त करने के प्रयत्न में इस तरह के स्वनिर्मित अकेलेपन का निषेध किया। गौर से देखें तो 'मिथुन राशि' कहानी में रेणु मानव-स्वभाव के एक भिन्न पहलू की तरफ़ इशारा करते हैं जिसमें स्त्री पुरुष-संबंध एक विषम धरातल पर आकार लेता है लेकिन एकाकीपन के आत्यंतिक दबाव में वह चरमरा नहीं जाता। पुरुष की लालसा और स्त्री की अबूझ आकांक्षा के बीच जीवन के थरथराते संतुलन और अप्रत्याशित नियति का यह अनोखा रूप है। इसलिए विषयवस्तु की दृष्टि से 'मिथुन राशि' एक ऑफबीट कहानी मालूम पड़ती है।

यह अर्धेड माथुर और नवयुवती रुमा की कहानी है। माथुर तीन स्त्रियों से तलाक के बाद अपने फ़्लैट में अब अकेला था। उसकी पहली पत्नी रेणुका ने उसे नकारा और गैर-ज़िम्मेदार समझकर छोड़ दिया। वैसे भी माथुर 'उसके हिसाब से था ही ताल मात्रा के अनुसार बेताला।' दूसरी कमला थी, जिससे तलाक लेने के पीछे माथुर की नज़र में कारण यह था कि, 'जब तक मैं बीमार न पड़ जाता वह मुझे कभी प्यार नहीं करती थी।' तीसरी लीला भी उसे लड़-झगड़ कर आखिर में छोड़ गई। तीनों ने उसे छोड़ते हुए आखिर में एक ही वाक्य कहा था, 'तुम जानवर हो।' जिस दिन लीला फ़्लैट छोड़कर गई सारी दोपहर रुमा की माँ फ़्लैट में रही। उधर अपने प्रेमी अरूप से एकांत में मिलने के लिए रुमा ने माथुर से मदद माँगी। दोनों को एक-दूसरे को समझने का मौक़ा देना माथुर के लिए पुण्यकार्य था। वह रुमा के हवाले घर छोड़कर कुछ घण्टे बाहर भटकता रहा। फिर दूसरा मौक़ा उन्हें तब मिला जब माथुर एक सप्ताह के लिए शहर से बाहर गया। लौट कर आने के बाद माथुर को अचरज हुआ कि रुमा ने कमरे में वस्तुओं को यथास्थान व्यवस्थित कर दिया था। देखकर माथुर को अनुमान हुआ कि दोनों रोज़ आते हैं। लेकिन रुमा ने बताया कि अरूप से बातचीत के बाद वह उसे डरपोक और अपने लिए नाक़ाबिल पाकर उसका ख़याल दिल से निकाल चुकी है। विडंबना यह है कि इधर रोमा आश्चर्यजनक रूप से माथुर के प्रति आकर्षित हुई और अपने माता-पिता का विरोध मोल लेकर माथुर के साथ रहने को तैयार हो गयी जो उसके पिता का मित्र था।

नाराज़ रूमा की माँ ने धमकी भरे शब्दों में माथुर से कहा कि अरूप का नाम लेकर तुम रूमा से खेलना चाहते हो। मैं तुम्हें छोड़ूँगी नहीं, तुम पर मुकदमा करूँगी। दिलचस्प यह है कि रूमा ने अपनी माँ के बारे में माथुर से कहा कि इसका विरोध करने और रोज़ धमकी देने के बावजूद वह मुकदमा नहीं करेगी क्योंकि 'माँ आपको बहुत दिनों से प्यार करती है। वह आप पर नाराज़ नहीं हो सकती है कभी।'

ऊपरी तौर से देखने पर यह पितृसत्ता के स्वच्छंद आचरण (मेल शावेनिज़्म) और उसकी आखेटवृत्ति के आगे स्त्री के वध्य होने की दास्तान है। या उससे मुक्ति के प्रयत्न में स्त्री के सफल या विफल होने का आख्यान है। मगर गौर करने पर मालूम होता है कि यह कहानी बहुत बारीक ढंग से स्त्री-मनोविज्ञान के कुछ अच्छे पहलुओं को रेखांकित करते हुए स्त्री-पुरुष संबंधों के नए धरातल की खोज भी करती है। यहाँ पुरुष अतिक्रामक है और स्त्री अबूझ है। पुरुष शिकारी है और स्त्री शिकार, लेकिन उत्पीड़ित (विक्टिम) होने की सचाई से अनजान। यहाँ स्त्री-पुरुष समीकरण अलग-अलग धरातलों पर सक्रिय है और अलग-अलग रूप ग्रहण करता है। माथुर का परित्याग करने वाली तीन स्त्रियाँ, रूमा की माँ और रूमा के साथ माथुर के रिश्ते पर गौर करें तो वे स्त्री-पुरुष-सम्बन्धों के एक जटिल और बहुस्तरीय विन्यास को और उन सम्बन्धों के आकार लेने की प्रयास: अननुमेय और दुर्बोध प्रक्रिया की तरफ़ इशारा करते हैं।

ज़ाहिर है, अगर पुरुष आखेटक और स्त्री आखेट है तो स्त्री-मनोविज्ञान में प्रेम, आसक्ति और विरक्ति की अन्तश्चेतनामूलक प्रक्रियाओं के चलते विभिन्न स्थितियों की अलग-अलग परिणतियाँ दिखाई देती हैं। एक स्तर पर प्रारंभिक अनुराग पारस्परिक सम्बन्धों में तालमेल की कमी के चलते पहले तनाव और फिर विरक्ति में तब्दील होता है। यह स्वाभाविक तौर पर होता है जैसा कि माथुर और उसकी तीन पूर्व-पत्नियों के बीच संबंधों में दिखाई देता है। पितृसत्ता के सामाजिक दायरे में स्त्री-पुरुष के बीच संबंध-विच्छेद को किसी नैतिक औज़ार से कुरेदने का कोई कारण भी नहीं बनता, क्योंकि समाज उसका अभ्यस्त है और यह अभ्यास परंपरा का रूप ले चुका है। इसलिए उनके बीच इस किस्म का तनाव और विरक्ति असामान्य नहीं है; न ही किसी स्त्री का अन्य पुरुष के लिए अनुराग असामान्य मालूम पड़ता है; जैसा कि रूमा की माँ का माथुर के प्रति झुकाव (जो माथुर के प्रति उसके व्यवहार में सांकेतिक रूप से झलकता है और कहानी के अंत में पूरी तरह खुल पड़ता है जब रूमा माथुर से कहती है कि 'माँ आपको बहुत दिनों से प्यार करती है। वह आप पर नाराज़ नहीं हो सकती कभी।') लेकिन युवा स्त्री का अर्धे पुरुष के प्रति आकर्षण, जो सहसा प्रबल आसक्ति (इन्फेच्युशन) के रूप में चरितार्थ होता है और जिसके चलते वह उसके साथ सहजीवन (लिव-इन) के लिये प्रस्तुत होती है, एक सामाजिक प्रवाद और गम्भीर नैतिक प्रश्न उत्पन्न करता है। हालाँकि यह प्रश्न आसक्ति स्त्री के लिए बेमानी है, क्योंकि आसक्ति इस क़दर प्रचण्ड हो उठती है कि आगा-पीछा कुछ नहीं सूझता। यह अंध आसक्ति या एक तरह का ऑब्सेसिव लव डिसऑर्डर है जिसे मनोविज्ञानी डोरोथी टेनोव ने लिमरेन्स की अवस्था कहा है। यह एक मानसिक स्थिति है जो किसी व्यक्ति के प्रति तीव्र रोमानी आकर्षण से उत्पन्न होती है और प्रभावित व्यक्ति के भीतर अनैच्छिक जुनूनी सम्मोहन और फैंटेसी रचती है। माथुर के प्रति रूमा की आसक्ति को इसी संदर्भ में देखना चाहिए। रेणु ने रूमा के भीतर उपजे सम्मोहन और फैंटेसी का वर्णन नहीं किया है; यँ भी यह इस कहानी का मकसद नहीं है। रेणु दरअसल इसे सांकेतिक कथात्मक युक्ति के रूप में इस्तेमाल करते हैं जब माथुर के प्लैट में रूमा के अकस्मात रहने आने के लिए तैयार होने को सूचना के तौर पर कहानी के

अंत में प्रस्तुत करते हैं। पाठक इस आकस्मिक प्रसंग के उल्लेख के साथ भ्रम चक रह जाता है। यह उसके लिए सर्वथा अप्रत्याशित है। कहानी इसी क्षण विडंबना का चरम बिंदु हासिल करती है। कहानी का यह ओ'हेनरी-सरीखा उपसंहार है जहाँ पाठक झटका खा जाता है और कहानी अपना लक्ष्य पा लेती है। (कुछ ऐसा ही झटका, हालाँकि कुछ ज़्यादा ज़ोर से, मंटो की 'खोल दो' या यशपाल की कहानी 'फूलों का कुर्ता' भी देती है। फ़र्क़ यह है कि मंटो और यशपाल आकस्मिक झटके का इस्तेमाल करते हुए अत्यंत मार्मिक और हृदय-विदारक प्रसंग रच डालते हैं जबकि रेणु की यह कहानी पाठक के भीतर नैतिक विकलता का स्फुरण उकसा कर रह जाती है। यहाँ विडंबना आकस्मिक तो है, मर्मभेदक नहीं है। पाठक यही सोचता रह जाता है कि तीन स्त्रियाँ से तलाक के बाद अपनी बेटी के बराबर की लड़की के साथ रहना कितना उचित है।

यहाँ सुविधा के लिए रूमा के बोल्ट चरित्र को लेकर वह चटखारे ले सकता है, माथुर पर नाक-भँसिकोड़ सकता है, रूमा के माता-पिता को गैर-ज़िम्मेदार कह सकता है। यानी समूची कहानी को वह चालू किस्म के

नैतिक चश्मे से देख कर स्खलन का ऐलान कर सकता है। जिस समाज में प्रेम-प्रसंग स्वीकार्य नहीं है वहाँ लिव-इन सम्बन्धों को वह कैसे स्वीकृति दे सकता है? लेकिन क्या वह उस यथार्थ से इनकार कर सकता है जो कस्बाई जीवन में धीरे-धीरे आकार ले रहा है? कहानी इसी यथार्थ का उद्घोष करती है। जीवन-मूल्य में संक्रमण को सहज ढंग से सूचित करती है, हाहाकारी मुद्रा में नहीं। शायद यही कहानी की सफलता भी है कि एक बोल्ड विषय को वह सहज तरीके से प्रस्तुत करती है।

यह कहानी पितृसत्ता को प्रश्नांकित नहीं करती। लेकिन क्या यह उसे उसे मौन समर्थन देती है? इस तथ्य से भला कैसे इनकार किया जा सकता है कि अपनी स्त्रियों के साथ तनावपूर्ण सम्बन्धों का कारण स्वयं माथुर का अराजक और गैर-ज़िम्मेदार आचरण है। आधिपत्य का भाव पुरुष के भीतर अहंकार पैदा करता है, उसके मानसिक लोकतंत्र का संहार करता है। आधिपत्य की शिकार स्त्री उससे मुक्त होकर अपनी स्वतंत्रता अर्जित करती है। माथुर की स्त्रियों ने यही किया। लेकिन माथुर का परित्याग उन्हें स्वयं उसके साथ अल्प वैवाहिक जीवन बिता कर उसके त्रासद अनुभव से गुज़रने के बाद किया। ज़ाहिर है, बहुविवाह को उन्होंने माथुर की ब्याहता बनने के साथ एक सामान्य सामाजिक व्यवहार के रूप में स्वीकृति दी थी। सच पूछा जाए तो पितृसत्ता की जकड़ इतनी मज़बूत है कि वह सामाजिक आचरण में व्यक्ति की लैंगिक पहचान के परे जा कर मानव-व्यवहार का नियंत्रण करने लगती है। यही कारण है कि पुरुषों के लिए बहुविवाह मान्य है स्त्रियों के लिए नहीं। पुरुषों का विवाहेतर सम्बंध ही नहीं, पुनर्विवाह भी अस्वीकार्य नहीं है। माथुर इस स्थिति का पूरा लाभ उठाता है; न सिर्फ़ वह तीन स्त्रियों से विवाह करता है, बल्कि रुमा के साथ लिव-इन के लिए भी तैयार है। पितृसत्ता के मनमानेपन के आगे सभी स्त्रियाँ नतमस्तक हैं।

यहाँ एक प्रश्न यह भी है कि पितृसत्ता के आधिपत्य का वर्णन करने वाली यह कहानी आखिर पितृसत्ता की पुष्टि करती हुई क्यों जान पड़ती है? मगर यही तो वह सामाजिक यथार्थ है जिसका वास्तविक विवरण कहानी देती है। क्या यह यथार्थ पितृसत्ता का प्रतिरोध करने वाले स्त्री-विमर्श के सैद्धांतिक आवरण में लिपटी नक़ली कहानियों की वीर-मुद्रा के मुकाबले ज़्यादा विश्वसनीय नहीं जान पड़ता? ख़ास तौर से इस बात को ध्यान में रखते हुए यह सवाल स्वाभाविक है कि यह कहानी पचास वर्ष पहले 1970 में लिखी गई थी जब भारतीय समाज नई तरह के बदलाव के शुरुआती दौर से गुज़र रहा था और जब लिव-इन सामान्य चलन में नहीं था (आज भी वह महानगरों के आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर जोड़ों के बीच न्यू नार्मल बन सका है, कस्बों में नहीं), फिर यह कहानी तो एक बेमेल लिव-इन सम्बन्धों की ओर इशारा करती है। इस लिहाज से देखें तो यह सचमुच एक बोल्ड कहानी है जो पितृसत्ता की करतूतों को उजागर करती है। यही उसका प्रतिरोध भी निहित है। लेकिन एक अच्छी कहानी इतिहास की चपेट में नहीं आ जाती, समसामयिक स्थितियों और तात्कालिक काल-संदर्भों का अतिक्रमण भी करती है। 1970 में लिखी जाने पर भी यह 2020 के सन्दर्भों से जुड़ जाती है।

पितृसत्ता की अतिक्रामकता के संकेत कहानी में जब-तब कथानायक के भीतर अत्यंत शक्तिशाली लिबिडो के उभार के रूप में दिखाई देते हैं। माथुर के फ़्लैट में पहली बार अकेली आई रुमा से अपने माँ-बाबा से अनुमति लेकर आने के सवाल पर रुमा का जवाब है कि वह माथुर से पढ़ने का बहाना बनाकर आई है और बाबा को मालूम है कि माथुर ने कबीर का गहरा अध्ययन किया है। इस पर माथुर कहता है, उन्हें यह भी पता है कि मैं 'संत कबीर' नहीं। माथुर के इस वाक्य में हल्का परिहास-भर नहीं है, उसमें सांकेतिक रूप से सूक्ष्म यौन व्यंजना निहित है। इस वाक्य को कहानी के आरंभिक पैराग्राफ़ के ब्यौरे के साथ रख कर देखें तो यह संकेत स्पष्ट हो जाता है। इसमें रुमा के जाने के बाद अधेड़ माथुर को आईने में अपना चेहरा देखकर तसल्ली हुई कि उसका एक भी बाल सफ़ेद नहीं है, जबकि रुमा के रहते उसे लगता था कि सारे बाल सफ़ेद हो गए हैं, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं और दंतपंक्तियाँ नक़ली हैं। माथुर का इस तरह आत्मचेतस होना रुमा और अपने बीच उम्र के फ़ासले को लेकर सजग होना-भर नहीं है। उसे तसल्ली इस बात की हुई है कि अभी भी वह जवान है और बुढ़ापा नहीं आया है। उसका स्वगत कथन है कि रुमा अपने भाई गोपू या या बहन डॉली के साथ जब भी आती थी तब कभी अपनी ढलती अवस्था को लेकर ऐसा ख्याल कभी नहीं आया। बल्कि 'ठीक उल्टा यानी जब तक रुमा रहती मेरी कनपटी गर्म रहती, लगता नाक और होठों के कगार पर चीटी चल रही है, रह-रह कर। और मेरी आँखों में रुमा न जाने क्या देखती है कि अपनी छाती के आसपास के कपड़े ठीक करने लगती है।'

रुमा के आत्मसजग होने की ओर उसका इस तरह ध्यान जाना भी सांकेतिक है। रुमा का ऐसा करना उसे अच्छा लगता है। लेकिन इस बार रुमा के चले जाने के बाद माथुर को लगा कि रुमा उसके मुँह पर तमाचा मार कर चली गई

है। अपमान और ग्लानि से उसका सारा शरीर झनझना उठा। वह सोचने लगा, 'मैंने संत-साहित्य का अध्ययन किया है लेकिन मैं संत नहीं हूँ, बल्कि लोगअ की निगाह में जीता-जागता असंत हूँ। पिछले पंद्रह साल के दरम्यान जिसने तीन-तीन भले घर की लड़कियों का क्रमशः पाणिग्रहण किया हो और छोड़ा हो, वैसे खूँखार और हिंस्र व्यक्ति के पास किसी कोमलमति बालिका को अकेले जाने की अनुमति कोई कैसे दे सकता है भला।' माथुर संत और इंदिरयजित नहीं है। ऐसा समझे जाने पर वह अपमानित महसूस करता है। इस बार आने पर रुमा का उससे न लजाना और न डरना इसीलिए उसे अपमानजनक लगता है। स्त्री का डरना और लजाना पुरुष के अहं को तुष्टि देता है। यही लीबिडो का खेल है।

माथुर आगे कहता है कि 'उस दिन रुमा के जाने के बाद मैंने अपने को फिर ढूँढ़ कर निकाला। अपने ऊपर पड़ी धूल-गर्द को झाड़-पछेकर देखा, रोम-रोम में आग की बूँदें अब भी जगमगा रही हैं। नखों और दाँतों की धार अब भी वैसी ही तेज़ है। किसी भूख की आग मंद नहीं हुई है।' यह यह तीव्र यौनेच्छा की, बलशाली लिबिडो की आँच है जो उसके भीतर बसी हुई है। एक और प्रसंग में अपने फ्लैट को रुमा और अरूप के हवाले करने के बाद बाहर भटकते माथुर की आत्मस्वीकृति है – 'दो बोतल बियर पीने के बाद मैंने अपनी एक झलक झाग और बीयर के झिलमिलाते मग पर देखी। दाँत और नाखून तेज़ करता हुआ, घात लगा कर बैठा हुआ प्राणी। वासना की आग में जलता हुआ जाम।' यह यौनिक आक्रामकता है। पितृसत्ता की पशुवृत्ति और उसका अधिनायकत्व इसके ज़रिए व्यक्त होता है। माथुर बार-बार अपने भीतर उसका दबाव महसूस करता है। ज़ाहिर है, माथुर के इस व्यवहार, खास तौर पर उसकी यौनिक विकलता, के पीछे रुमा की मौजूदगी के अलावा भला और क्या हो सकता है? यह उसके भीतर प्रच्छन्न रूप से उमड़ता-धुमड़ता है और उसे उद्वेलित किये रहता है। इसे 'मिथुन राशि' शीर्षक की व्यंजना में भी पकड़ा जा सकता है।

बेशक इस कहानी में रेणु की भाषा का वह लालित्य नहीं है जिसे ग्रामीण संवेदना की कथा के संदर्भ में उनकी विशिष्ट उपलब्धि के तौर पर पहचाना गया था। इसका कारण एक भिन्न परिवेश और पारिस्थितिकी में कहानी का घटित होना भी है। लेकिन इसकी भाषा में लोक-लय से अलग नए परिवेश के अनुकूल एक अलग तरह की लय है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह शहरी जीवन की लय है जो भाषा में नया तेवर लेती है। कहीं-कहीं तो भाषा का जादू मानो उसकी त्वरा में सहसा खिल उठता है। मसलन माथुर

(5)

की यौनेच्छा के उभार के संकेतों में या 'रोम-रोम में आग की बूँदें अब भी जगमगा रही हैं' जैसे वाक्य में। रेणु के अंतःवीक्षण की बारीकियों और कथा-स्थितियों के साथ चरित्रों की मनःस्थिति के संयोजन में उनकी भाषिक कुशलता को यहाँ भी पहचाना जा सकता है। उनके विवरणों में वाचाल किस्म की मुखरता नहीं, मितकथन की सांकेतिकता और लाक्षणिकता है। एक जटिल कथ्य को प्रस्तुत करने और स्त्री के मनोलोक की गुत्थियों को खोलने के लिए यहाँ रेणु ने सधे-सुलझे संयत शिल्प और विदग्ध भाषा का सहारा लिया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह विदग्धता इस कहानी में लालित्य का सटीक विकल्प है।

कर्मचारी नगर सोसायटी के पास,
ए-63 के पीछे,
सिकोलाभाठा, दुर्ग (छत्तीसगढ़) 491001
फ़ोन : 9981064205